।। ओ३म् ।।

...पे का जादू

—यशपाल आर्यबन्धु

॥ ओ३म् ॥

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

ऋषि का जादू

लेखक :

यशपाल आर्यबन्धु

प्रकाशक :

आर्य समाज रेलवे हरथला कालोनी,

मुरादाबाद

मुद्रक :

आलोक प्रेस

डिप्टी गंज, मुरादाबाद

प्रथम संस्करण नवम्बर १९८१

मूल्य नहीं सहयोग चाहिये

आर्य समाज रेलवे हरथला कालोना, मुरादाबाद की साहित्य प्रकाशन की अपनी अनूठी परम्परा है। विशेषता यह है कि यह अपने प्रकाशनों का मूल्य नहीं लेता, नि:शुल्क वितरित करता है। इस पर भी आर्य समाज की यह चाहना है कि उसका साहित्य-प्रचार महायज्ञ अनवरत रूप एवं अबाध गति से चलता रहे। इसके लिये साहित्य-प्रेमी, उदार दानी महानुभावों के सात्विक सहयोग की अपेक्षा है। आर्य समाज आप से प्रस्तुत पुस्तक का मूल्य नहीं ले रहा, पर क्या आप नि:शुल्क लेना पसन्द करेंगे ? यदि नहीं तो फिर आप आर्य समाज के साहित्य प्रकाशन यज्ञ में अपनी आहुति देकर साहित्य प्रचार में सहयोगी बन सकते हैं।

आगामी प्रकाशनों के लिये आपका सात्विक सहयोग सहर्ष स्वीकार्य होगा।

नोट : न्यून से न्यून दस रुपये सहयोग में प्रदान करने वाले महानुभावों का नाम आगामी प्रकाशन में कृतज्ञता पूर्वक प्रकाशित किया जायेगा। दस रुपये से कम राशि को सम्मिलित रूप से फुटकर दान के अन्तर्गत प्रकाशित किया जायेगा।

सहयोगाकांक्षी :

हरिवंश लाल कुमार
प्रधान

महावीर सिंह
मन्त्री

रामाश्रय लाल
कोषाध्यक्ष

राम प्रसाद गुप्त
प्रचार अधिष्ठाता

यशपाल आर्यबन्धु
प्रचार मन्त्री

आर्य समाज रेलवे हरथला कालोनी, मुरादाबाद

॥ ओ३म् ॥
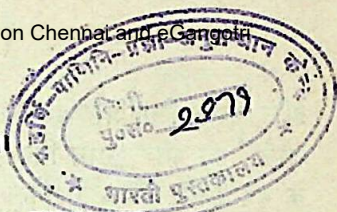
* ऋषि का जादू *

आर्य समाज जादू टोनों और चमत्कारों में विश्वास नहीं रखता बल्कि अपनी पूरी शक्ति से इन मिथ्या आडम्बरों का खण्डन करता है। आर्य समाज के यशस्वी संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसीलिये थियोसोफिकल सोसायटी से आर्यसमाज के सम्बन्ध विच्छेद कर लिये थे कि उक्त सोसायटी जादू, टोनों, सिद्धियों एवं चमत्कारों के मिथ्या प्रपंच में फंस गई थी एवं उसका प्रचार करती थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती जो स्वयं भी पाखण्ड के खण्डन का व्रत धारे हुए थे, भला इस पाखण्ड को कैसे पनपने दे सकते थे। अतः उन्होंने तत्काल उक्त सोसायटी से आर्य समाज का सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द और उनके द्वारा संस्थापित आर्य समाज जादू, टोनों तथा चमत्कारों को पाखण्ड ही मानता है और उसका भरसक विरोध करता है। ऐसी स्थिति में कि जब आर्य समाज और उसका संस्थापक जादू आदि का विरोध करते हों तो फिर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि यह "ऋषि का जादू" कैसा? यह जानते हुये भी कि जादू कोरा पाखण्ड है, हम यहाँ ऋषि का जादू दिखाना चाह रहे हैं। पर क्या यह जादू भी कोरा पाखण्ड है? इसका उत्तर तो आपको प्रस्तुत पुस्तक के स्वाध्याय से ही मिलेगा। पर हम जिस जादू को दिखाने जा रहे हैं उसकी चर्चा करने से पूर्व अपने मन्तव्य को स्पष्ट कर देना उचित समझते हैं,

और इसके लिए प्रसिद्ध लोकोक्ति "जादू वह जो सर पर चढ़ कर बोले" की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं। और इसमें छिपे जादू के गूढ़ रहस्य की ओर संकेत करना चाहते हैं। साधारणतया जादू का अर्थ चकित कर देना, सम्मोहित कर देना, भ्रमित कर देना, आश्चर्य में डाल देना आदि ही लिया जाता है। यह इसलिए कि प्रायः जादू में लोगों की आँखों में धूल झौंकने का, उन्हें सम्मोहित करने का, धोखे में, भ्रम में रखने का प्रयत्न किया जाता है अतः इस जादू शब्द का यही अर्थ लिया जाने लगा है। पर हमारी समझ में जादू का वास्तविक अर्थ वह नहीं कि जो प्रायः लोग समझते हैं। उपर्युक्त कहावत के अनुसार जादू वह होता है कि जो देखने वाले के सिर पर चढ़कर बोलने लगे अर्थात् उसके मस्तिष्क में घुसकर जैसा वह चाहे वैसा कहलवाने में सफल हो सके। तात्पर्य यह कि वह दर्शक पर इतना गहरा प्रभाव डाल दे कि वह अपनी मान्यता बदलने को वाध्य हो जावे। तभी तो यह कहावत सार्थक हो सकती है। साधारण जादूगरी जिसे हम हाथ की सफाई, चालाकी आदि कह सकते हैं आँखों में धूल झौंकने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। पर जिस जादूगरी कि हम चर्चा करने वाले हैं, वह आँखों में धूल झौंकने वाली नहीं अपितु आँखें खोलने वाली जादूगरी है। यह भ्रम में डालने वाली नहीं भ्रमों से छुड़ाने वाली जादूगरी है। महर्षि दयानन्द सत्य के उपासक थे। उनका सम्पूर्ण जीवन ही सत्य के लिये समर्पित था। उनके जीवन का लक्ष्य भी शाश्वत सत्य के दर्शन करना एवम् उसका उद्घाटन करना था। ऐसी अवस्था में फिर उसका कोई अनुयायी उसके पवित्र नाम के साथ किसी मिथ्या बात को कैसे जोड़ सकता है ? तो आइये। "जादू वह जो सिर पर चढ़ कर बोले" के यथार्थ भाव को लेकर हम ऋषि के जादू को देखें। और

विचारें कि उसका जादू लोगों के मस्तिष्क में घुसकर उनकी विचारधारा को बदलने में कितना सफल हो सका है ?

महर्षि दयानन्द जिस समय आये थे उस समय सर्वत्र अज्ञान अविद्या, अन्धकार और पाखण्ड का साम्राज्य था। विद्या लोप हो चुकी थी और सर्वत्र गहरा अन्धकार छाया हुआ था। परिणाम स्वरूप मिथ्या आडम्बरों का बोलबाला था और समाज बुरी तरह रूढ़ियों में जकड़ चुका था। महर्षि ने इस सारी स्थिति को अच्छी तरह से देखा और फिर पूरी तैयारी के साथ कार्यक्षेत्र में उतरे और एक क्रांति का नारा दिया। महर्षि कैसी क्रांति चाहते थे और उसे लाने में वे कितना सफल हुए हैं, इस पर विचार करने से पूर्व 'क्रांति' शब्द पर विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं। क्योंकि "जादू" शब्द की भाँति "क्रांति" शब्द का प्रचलित अर्थ भी वड़ा भ्रम फैला रहा है। आज क्रांति से तात्पर्य प्रायः रक्तपात, उथल-पुथल, उलट-फेर, विद्रोह आदि ही लिया जाता है। पर यह सव क्रांति के वास्तविक अर्थ नहीं। हम संक्रमण और संक्रांति शब्दों का प्रयोग करते हैं। क्रांति में केवल 'स' उपसर्ग ही तो नहीं। पर क्या कोई संक्रमण अथवा संक्रांति का अर्थ अच्छी तरह से उलट-फेर आदि कर सकता है ? नहीं। ऐसा कोई नहीं कर सकता। फिर क्रांति का ऐसा अर्थ क्यों करते हैं ? क्रांति का अर्थ तो एक स्थिति से दूसरी स्थिति में परिवर्तन अथवा संक्रमण होता है। अतः क्रांति का अर्थ तीव्र परिवर्तन है। सामान्य परिवर्तन को सुधार कहते हैं और तीव्र अथवा असामान्य परिवर्तन को क्रांति कहते हैं। गली सड़ी अवैज्ञानिक मान्यताओं और रूढ़िवादी निरर्थक परम्पराओं एवं कुप्रथाओं में जब एकदम परिवर्तन आ जाये तो वह क्रांति है। महर्षि दयानन्द ऐसी ही क्रांति चाहते थे। रक्त-पात, उलट-फेर आदि नहीं। वे हमारे

विचारों में तीव्र परिवर्तन चाहते थे, वैचारिक क्रांति चाहते थे। सच पूछिये तो वैचारिक क्रांति ही सब क्रांतियों का मूलाधार हुआ करती है और ऋषि दयानन्द उसी में विश्वास रखते थे और वैसी क्रांति लाना भी चाहते थे। विचारों में तीव्र परिवर्तन का नाम ही जादू है और हम इसी जादू की चर्चा करने जा रहे हैं।

प्रश्न उठता है कि महर्षि दयानन्द ने वैचारिक क्रांति को इतना महत्व क्यों दिया और इसे समग्र क्रांति का मूलाधार क्यों माना ? यह इसलिये कि मनुष्य एक कर्मशील प्राणी है। वह कर्म के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। और कर्म भी विचार से ही उत्पन्न होता है। हमारे विचार ही हमारे कर्मों को नियन्त्रित करते हैं। बिना विचार के जो कर्म किये जाते हैं, उनमें अन्ततः पछताना ही पड़ता है क्योंकि विचार का दीपक बुझ जाने से आचार अन्धा हो जाता है। अतः कर्मों में क्रांति लाने के लिये विचारों में क्रांति लाना आवश्यक हुआ करता है। सत्य तो यह है कि कर्म सरल है, विचार कठिन। हमारे विचार ही हमारे भविष्य का निर्माण किया करते हैं। हम जैसा सोचते हैं, वैसा ही बनते चले जाते हैं। यह जाने बिना कि वह अच्छा बन रहा है या बुरा हम अपनी विचारों की श्रृङ्खला से अपने भविष्य को बनाते चले जाते हैं। तभी वैदिक भाषा में विचारों को सङ्कल्प कहा गया है। हमारे विचार ही हमारी आदतों का, हमारे चरित्र का और हमारे भविष्य का निर्माण किया करते हैं। जैसे विचार हों, वैसी ही मति भी बन जाया करती है और मनुष्य वैसे ही कर्म भी करने लग जाया करता है। अतः विचारों का महत्व स्वयं सिद्ध है। एक महान् विचार एक महान् कर्म को उत्पन्न कर सकता है। संसार छोटे विचारों के बड़े आदमियों पर नहीं

बड़े विचार के छोटे आदमियों पर टिका है। अतः विचारों में महानता लाने की आवश्यकता है, क्रांति लाने की आवश्यकता है। जिसके विचार मरे हुए हैं वह पहले ही मरा हुआ है। अतः सिद्ध है कि वैचारिक क्रांति ही समस्त क्रांतियों का मूलाधार हो सकती है। महर्षि दयानन्द ने यही सब सोच कर सर्वप्रथम वैचारिक क्रांति का उद्घोष किया था। जब विचारों में क्रांति आ जाती है तो मनुष्य के सोचने का ढंग ही बदल जाता है। उसमें एक नयी स्फूर्ति, एक नया उत्साह आ जाता है जो उसे कुछ कर दिखाने को प्रेरित किया करता है यही वैचारिक क्रांति का चरम उत्कर्ष है। तो आइये! ऋषि दयानन्द द्वारा आहूत क्रांति का थोड़ा मूल्यांकन किया जाये।

महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व धर्म में तर्क का कोई स्थान नहीं था। उसमें बुद्धि के उपयोग का कोई अवसर नहीं था। परिणामस्वरूप अंग्रेजी और विज्ञान पढ़े लोग या तो नास्तिक होते चले जा रहे थे या फिर ईसाई आदि विधर्मी। स्वामी दयानन्द प्रथम महामानव थे जिन्होंने बुद्धि और तर्क को धर्म के साथ संयुक्त किया और धर्म की प्रत्येक बात को उस पर कसने का आह्वान किया। उनका कथन था कि जब लोक-व्यवहार में आप पग-पग पर बुद्धि और तर्क का सहारा लेते हैं तो फिर धर्म व्यवहार में उसे क्यों छोड़ देते हैं। तर्क से घबराना कोरी कायरता है। रूढ़िवादी तर्कहीन अवैज्ञानिक धर्मव्याख्यायें पढ़े-लिखे नवयुवकों के गले नहीं उतर रही थीं। उधर नवोदित विज्ञान ने बाईबिल और कुरान आदि की अवैज्ञानिक मान्यताओं को मानने से इनकार कर दिया। और यह समझा जाने लगा कि विज्ञान ईश्वर को नहीं मानता। अतः पढ़े-लिखे लोगों का नास्तिक बन जाना एक फैशन सा हो गया था। मुंशीराम तथा गुरुदत्त

सरीखे पढ़े-लिखे लोग नास्तिक हो चुके थे। यह लोग उनके प्रतिनिधि के रूप में माने जा सकते हैं कि जो विज्ञान को पढ़कर अथवा अंग्रेजी पढ़कर आस्तिक होने में शर्म और नास्तिक होने में गर्व अनुभव करते थे। पर महर्षि दयानन्द की तर्कपूर्ण वैज्ञानिक विचारधारा ने उन पर कैसा और क्या भाव डाला यह विशेष उल्लेखनीय है। नवीन विज्ञान के प्रकाश में पले नवयुवक जिन्हें अपनी नास्तिकता पर गर्व था और जो आस्तिकता के सभी तर्कों को फूंकों में उड़ा देने का दम भरा करते थे, महर्षि दयानन्द के सामने आते ही ऐसी पछाड़ खाते हैं कि नास्तिकता का सारा गर्व चूर होकर रह जाता है। यह जादू नहीं तो और क्या है? मुन्शी राम (स्वामी श्रद्धानन्द जी) तथा गुरुदत्त विद्यार्थी ऐसे ही थे कि जिनकी नास्तिकता का गर्व महर्षि दयानन्द के जादू से पछाड़ खा कर चूर-चूर हो गया था और वे आस्तिक ही नहीं, आस्तिकता के प्रबल प्रचारक बन गये।

मुन्शी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) पर जादू—

आर्यसमाज के गौरव स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज तो अपनी विचारधारा के परिवर्तन में महर्षि दयानन्द के जादू को स्पष्ट शब्दों में अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हैं। अपनी आत्म कथा (कल्याण मार्ग का पथिक) में वे लिखते हैं कि "काशी में प्रसिद्ध हुआ कि एक वेद-शास्त्र का ज्ञाता बड़ा नास्तिक आया है जिसके दोनों ओर दिन में मशाले जलती हैं। जो भी पण्डित उससे शास्त्रार्थ करने जाता है, उनके तेज से दब जाता है। मुझे भली प्रकार याद है कि माता जी उन दिनों हमें बाहर नहीं जाने देती थीं इस भय से कि कहीं हम दोनों भाई इस जादूगर के फंदे में न फंस जाये। पिता जी ने पीछे बताया कि यह प्रसिद्ध अवधूत दयानन्द ही था।" पाठकगण! जिस मुन्शी राम को उनकी माता

इस भय से घर से बाहर नहीं निकलने देती थीं कि कहीं नास्तिक जादूगर दयानन्द के फंदे में न फंस जाये उसी के पास नास्तिकता के नाश के लिये उनके पिता बरेली में स्वयं ले जाते हैं। यह तो धूर्तों ने महर्षि दयानन्द को बदनाम करने के लिये उड़ा रखी थी कि दयानन्द नास्तिक है पर जब बरेली में मुन्शी राम जी के पिता ने जो वहाँ नगर कोतवाल थे, स्वयं उनका व्याख्यान सुना और निश्चय किया कि दयानन्द सरीखा आस्तिक तो ढूंढने से भी नहीं मिल सकता और आशा बंधी कि महर्षि दयानन्द के व्याख्यान सुनकर मुन्शीराम की ईश्वर के अस्तित्व सम्बन्धी शंकायें दूर हो सकती हैं तो स्वयं ही उन्हें उनके पास चलने के लिये प्रेरित किया। मुन्शी राम ने चलने को कह तो दिया पर वे सोचते थे कि केवल संस्कृत पढ़ा व्यक्ति भी कोई बुद्धि संगत बात कह सकता है। दूसरे दिन जब निश्चित समय पर व्याख्यान सुनने के लिए गये तो वहां पादरी स्काट तथा तीन अन्य यूरोपियनों को बैठे देखा और कई एक शिक्षित लोगों को बैठे देखा तो उत्सुकता बढ़ी। उस आदित्य ब्रह्मचारी को देखते ही श्रद्धा उमड़ पड़ी। और जब व्याख्यान सुना तो दंग रह गये। स्वामी श्रद्धानन्द जी के अपने शब्दों में—"अभी दस मिनिट वक्तृता (व्याख्यान) नहीं सुनी थी कि मन में विचार किया—यह विचित्र व्यक्ति है जो केवल संस्कृतज्ञ होते हुऐ युक्तियुक्त बातें करता है कि विद्वान दंग हो जायें। व्याख्यान परमात्मा के निज नाम ओम् पर था। वह पहले दिन का आत्मिक आह्लाद कभी भूल नहीं सकता। नास्तिक रहते हुये भी आत्मिक आह्लाद में निमग्न कर देना ऋषि आत्मा का ही काम था।" यह है ऋषि का जादू जो नास्तिक को भी कुछ सोचने को बाध्य कर रहा है। उसके मन में भी अपार आनन्द का संचार कर रहा है।

मोहित कर दिया—

महर्षि दयानन्द के उपदेशों से मुंशी राम इतने प्रभावित हुये कि जिसकी कोई आशा भी नहीं कर सकता था। इस तथ्य को स्वीकारते हुए स्वामी जी अपनी आत्म कथा में लिखते हैं कि "यद्यपि आचार्य दयानन्द के उपदेशों ने मुझे मोहित कर दिया था तथापि मैं मन में सोचा करता था कि यदि ईश्वर और वेद के ढकोसले को पण्डित दयानन्द स्वामी तिलांजलि दे दें तो फिर कोई भी विद्वान उनकी अपूर्व युक्ति और तर्कना शक्ति का सामना करने वाला न रहे मुझे अपने नास्तिकपन का उन दिनों अभिमान था, एक दिन ईश्वर के अस्तित्व पर आक्षेप कर डाले। पांच मिनट के प्रश्नोत्तर में ऐसा घिर गया कि जिह्वा पर मुहर लग गयी। मैंने कहा—महाराज! आपकी तर्कना बड़ी तीक्ष्ण है। आपने मुझे चुप करा दिया परन्तु विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती है। दूसरी बार फिर तैयारी करके गया, परन्तु परिणाम पूर्ववत् ही निकला। तीसरी बार फिर पूरी तैयारी करके गया, परन्तु मेरे तर्क को फिर पछाड़ मिली।"

जादू है कि तिलसिम तेरी जुबान में।
कायल हुए क्या बात है, तेरी जुबान में॥

और अन्त में इस नास्तिक नवयुवक ने हथियार डाल दिये। अब वह नास्तिक नहीं पूर्ण आस्तिक बन चुका है और बड़े आत्म विश्वास के साथ लिख रहा है कि "माता जी को क्या मालूम कि उनके देहान्त के पीछे उनका प्यारा बच्चा उसी जादूगर के उपदेश से प्रभावित होकर उसका अनुयायी बन जायेगा?" सत्य है—"किसी की आंख में जादू किसी की जुबां में है।"

गुरुदत्त पर जादू—

गुरुदत्त एक विज्ञान पढ़ा नास्तिक नवयुवक था। हम उसे उस वर्ग का प्रतिनिधि कह सकते हैं कि जो विज्ञान पढ़ कर नास्तिक हो रहे थे। मुंशी राम वकालत पढ़े तार्किक प्रकृति के नवयुवकों के प्रतिनिधि थे कि जो तर्क पर ईश्वरवाद खरा न उतरते देख कर नास्तिक हो रहे थे जबकि गुरुदत्त विज्ञान की कसौटी पर आस्तिकवाद खरा न उतरने के कारण आस्तिक हो रहे थे। यह नहीं कि ईश्वर तर्क और विज्ञान पर खरा न उतरता हो पर ईश्वर सम्बन्धी जो मान्यतायें उस समय प्रचलित थीं, वे तर्क और विज्ञान सम्मत नहीं थी। महर्षि दयानन्द ने पुराण, कुरान और बाइबिल में वर्णित ईश्वर के गुणों को दोषपूर्ण बताया और शुद्ध वैदिक स्वरूप तर्क और विज्ञान से सर्वथा मेल खाता है। परिणाम स्वरूप लोग नई रोशनी में ईश्वर के सम्बन्ध में अपने विचारों का पुनर्मूल्यांकन करने लगे। तर्क ने महर्षि से कैसी पछाड़ खायी आप देख चुके हैं, अब यह देखना है कि विज्ञान कैसी पछाड़ खाता है ? गुरुदत्त को महर्षि की सेवा के लिए अजमेर भेजा गया था। वे महर्षि की विगड़ी दशा को देख कर बहुत दुखी हुये। रोम-रोम से पीप फूट रहा था और असह्य कष्ट था। इस पर भी महर्षि की सहनशीलता एवं मनोदशा को देख कर वें चकित थे। वे सोचने लगे कि यह कोई मनुष्य है या पत्थर जो अपार कष्टों के रहते हुये भी तनिक सा भी विचलित नहीं होता और जब दीपावली की शाम को महर्षि ने हंसते-हंसते और प्रभु का स्मरण करते हुए अपने प्राण त्यागे तो वह और भी चकित हो उठा। वह यह सोचने को मजबूर हो गया कि आखिर यह क्या बात है जो महर्षि इस प्रकार मृत्यु का आलिंगन कर रहे हैं। उसे

लगा कि जैसे कोई किसी से मिलने को आतुर हो उठा हो पता नहीं यह मौत थी या प्रिय मिलन की वेला ? सत्य है—

"मरने वाले के होंठों पर तबस्सुम की झलक,
मौत ने वस्ल का पैगाम दिया हो जैसे ।"

गुरुदत्त जहाँ एक ओर महर्षि के हंसते-हंसते प्राण त्यागने को विस्मय-भरी दृष्टि से देख रहे थे और सोच रहे थे कि आखिर कोई ऐसी शक्ति अवश्य है कि जिससे मिलने के लिये इनकी आत्मा अधीर हो रही है। वहां दूसरी ओर वे अपनी बेबसी पर भी हताश और निराश हो रहे थे कि—

"न हाथ पकड़ सके न थाम सके दामन,
बड़े करीब से उठ कर चला गया कोई ।"

वह सोचने लगे कि आखिर वह क्या वस्तु थी जो इनके शरीर से निकल कर कहीं चली गई है और उनके शरीर को अचेतन कर के डाल गई है ? शरीर से वह वस्तु किस की व्यवस्था से निकली है और कहां को गई है ? इतनी शारीरिक पीड़ा के रहते हुये भी महर्षि प्रसन्न क्यों थे ? उन्होंने इतने उल्लास के साथ प्राण क्यों त्यागे ? वे अपने अन्तिम क्षणों में किसे याद कर रहे थे ? कोई तो ऐसी शक्ति अवश्यमेव है कि जिसे दयानन्द जाते-जाते याद कर रहे हैं और वह शक्ति जन्म और मृत्यु की व्यवस्था कर रही है। क्या वही परमात्मा तो नहीं ? महर्षि की मृत्यु के इस दृश्य ने गुरुदत्त के मस्तिष्क में एक अपूर्व हलचल सी मचा दी। उसे अपनी पूर्व मान्यता को हठात् छोड़ना पड़ा और वे सच्चे आस्तिक बन गये। क्या इसी का नाम जादू नहीं कि जो सिर पर चढ़ कर बोलता है। जो चीज़ डार्विन और स्पेन्सर, न्यूटन और बेकन नहीं दे सके थे, वह चीज़ उसे महर्षि की मृत्यु दे गई। दीपक ने बुझते बुझते भी एक और दीपक जला दिया। अहा ! जीवन से जीवन

मिलने की बात तो सभी ने सुनी होगी पर मृत्यु से जीवन मिलने की यह सर्वथा अनूठी एवं अभूतपूर्व घटना है। हम यह तो सुनते आये थे कि—

"जीने वाले इस तरह जी, मरने वाले इस तरह मर।
दे जाये कुछ सबक तेरी जिन्दगी भी मौत भी ॥"

पर मृत्यु से जीवन मिलने की यह अनोखी घटना स्यात् इतिहास के पन्नों पर खोजने से भी न मिले। बलिहारी इस मृत्यु की। वस्तुतः कितने ही जीवन इस मृत्यु पर न्यौछावर किये जा सकते हैं। क्या अद्भुत दृश्य है। कोई रो धो कर देखते ही रह गये और कोई जादू के प्रभाव में आकर नास्तिक से आस्तिक शिरोमणि बन गये। गुरुदत्त विद्यार्थी महर्षि के अन्तिम दृश्य से ऐसे प्रभावित हुए कि मानों किसी ने जादू ही कर दिया हो। जब वे घर पहुँचे तो एक लम्बा चोला सिलवाया जिस के दोनों ओर आर्यसमाज के पाँच-पाँच नियम लिखवाये और गले में डाल कर सड़कों पर दीवानों को भांति घूमने लगे। अरे! यह जादू नहीं तो फिर और क्या है?

अमींचन्द पर जादू—

जेहलम (पाकिस्तान) के तहसीलदार महता अमीचन्द जो अनेकों दुर्व्यसनों में ग्रस्त थे, महर्षि दयानन्द के केवल एक ही वाक्य से बदल गये कि "अमीचन्द हो तो हीरे, पर कीचड़ में पड़े हुए।" महर्षि का यह वाक्य अमीचन्द पर जादू कर गया और वह कीचड़ से, पाप पंक से निकल कर बाहर आ खड़ा हुआ। और ऐसा बदला कि देखने वाले दंग रह गये। आज भी उनके भक्ति रस सने गीत आर्यसमाज में बड़े चाव से गाये जाते हैं। मथुरा के पाण्डे मदन दत्त, अमृतसर के पादरी खडग सिंह और न जाने

कौन-कौन महर्षि के सम्मुख आते ही ऐसे प्रभावित हुए कि घर से तो आये थे शास्त्रार्थ करने को पर उलटा वैदिक धर्म का प्रचार करने लग गये। यह चमत्कार नहीं तो क्या है ?

चरित्र का जादू—

महर्षि दयानन्द की पावन विचारधारा जहां जादू का सा प्रभाव रखती थी वहां उनका चरित्र भी अनेकों के लिए प्रेरणा-स्रोत बन गया था। अनेकों पतितों के जीवन महर्षि के उज्जवल चरित्र से सुधर गये। एक विशेष घटना का यहां उल्लेख करना पर्याप्त समझते हैं। मथुरा में कुछ ऐसे दुष्टों ने एक कुलटा स्त्री को समझा-बुझा कर उन्हें कलंकित करने के लिए महर्षि के पास भेजा कि सभा में जाकर महर्षि के विरुद्ध कुछ अनर्गल बातें कह दे ताकि हम उन बातों को लेकर उन्हें बदनाम कर सकें। वह स्त्री रास्ते में तो अंट-शंट बड़बड़ाती सी रही पर जब देव दयानन्द के सम्मुख आई तो उनके परम पुनीत तेजोमय मुखमण्डल को देख कर उसके मन का सारा पाप तिरोहित हो गया। और बजाये अपशब्द कहने के वह पश्चाताप करने लगी। उसकी आत्मा ने उसे धिक्कारा कि तू व्यर्थ को ही एक महात्मा को कलंकित करने का पाप करने जा रही थी। ऐसा सोच कर वह व्यथित और व्याकुल हो उठी और महर्षि के सम्मुख जाकर अति आतुर होकर क्षमा मांगने लगी। महर्षि के पूछने पर रो-रो कर सारा हाल कह सुनाया। महर्षि ने उसे सांत्वना दी और कहा कि—"देवी जाओ ! ईश्वर करे कि तुम्हारी इस समय की सुमति स्थिर बनी रहे।" क्या कमाल है ? घर से चली थी ऋषि को कलंकित करने के लिए, उन पर कीचड़ उछालने के लिये पर महर्षि के निष्कंलक पावन चरित्र का ऐसा जादू हुआ कि जीवन धारा ही बदल गई।

महर्षि के इसी पावन चरित्र पर मोहित होकर ब्रह्मसमाजी नवयुवक देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय ने अपने यौवन के पूरे पन्द्रह वर्ष उसके जीवन चरित्र की खोज में खपा डाले। उस व्यक्ति ने अपने ही व्यय से जन्म से मृत्यु तक महर्षि दयानन्द जहां-जहां गये, वहां-वहां स्वयं जाकर उनके जीवन की घटनाओं को संजोया है। ऋषि के जीवन चरित्र की अपनी भूमिका में वे स्वयं लिखते हैं कि—"हमसे हमारे बन्धुवर्ग बार-बार यह प्रश्न करते हैं कि तुम यह क्या कर रहे हो ? मनुष्य पृथ्वी पर जन्म लेकर जो काम करते हैं, जिस मार्ग का अनुसरण करते हैं, तुम उनमें से कोई काम भी नहीं करते ? तुमने अपने जीवन का इतना समय केवल 'दयानन्द, दयानन्द' की रट लगा कर गंवाया है। जीवन के जिस अंश को सबसे श्रेष्ठ माना जाता है तुमने उसे 'दयानन्द, दयानन्द' कह के ही विताया है। बन्धुवर्ग का यह आक्षेप सर्वथा निर्मूल भी नहीं है, क्योंकि गत १५ वर्ष से अधिक भाग को हमने दयानन्द सम्बन्धी कार्य में ही लगाया है। दयानन्द सरस्वती की जीवन कथा के कीर्त्तन करने, दयानन्द के एक सर्वांगीण सुन्दर जीवन-चरित्र के प्रकाशित करने के अभिप्राय से सामिग्री और विवरण-माला के संग्रह करने में पूरे १५ वर्ष न भी लगें हों पर इसमें तो सन्देह नहीं है कि १० वर्ष तो अवश्य ही लगे हैं। सहस्रों रुपयों की प्राप्ति के लिये मनुष्य जितना उत्साह और परिश्रम करता है, हमने उतना उत्साह और परिश्रम दयानन्द के जीवन की एक-एक घटना का पता लगाने में व्यय कर दिया है। ....न हमने जाड़े की परवाह की है न गर्मी की, न शरीर के स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिया, न अस्वास्थ्य की ओर। कभी-कभी हम धनाभाव के कारण अस्थिर तक हो गये, परन्तु हमने अपने व्रत को नहीं तोड़ा। प्रवास के कष्टों को भी हर प्रकार सहन किया। जो व्रत हमने धारण किया था उससे हमें किसी वस्तु ने एक दिन

के लिये भी विचलित नहीं किया, न प्रबल धनाभाव ने, न अनेक प्रकार की वाधाओं ने, और न ही प्रवास की असुविधाओं से उत्पन्न हुये सामयिक नैराश्य ने। परन्तु प्रश्न यह है कि इन कठिनाइयों ने हमें विचलित क्यों नहीं किया ? दयानन्द कौन है ? उसकी शिक्षा में ऐसी कौन सी अलौकिक शक्ति है, उसके उपदेशों में ऐसा कौन सा संजीवन मंत्र छिपा हुआ है, जिसके कारण हम उसके जीवन, इतिहास के लिये क्लेश पर क्लेश सहते आये हैं ?' प्रश्न गम्भीर है। उत्तर उससे भी गम्भीर। जिसे हम विस्तार भय से यहां नहीं दे रहे और पाठकों से देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय कृत 'दयानन्द दिव्य दर्शन' पढ़ने का परामर्श देंगे। हम तो यहां केवल यही बताना चाहते हैं कि आखिर वह क्या बात थी, वह कौन सा जादू था कि जिससे देवेन्द्र बाबू इतने प्रभावित हुये थे। वह था ऋषि दयानन्द का पावन चरित्र। जिसे देवेन्द्र बाबू "दयानन्द गंगा" कहते हुये लिखते हैं कि— "संन्यासी परमहंसों के गंगा परिक्रम के समान दयानन्द–गंगा की उत्पत्ति भूमि से आरम्भ करके गंगा के किनारे-किनारे विचरते हुये गंगा सागर तक गमन करके अपने परिक्रम का कार्य समाप्त करते हैं। हमने भी दयानन्द के जन्म गृह से आरम्भ करके उनकी शमशान-भूमि तक पर्यटन किया है। टंकारा जिसके जीवापुर मुहल्ले के जिस घर में उन्होंने जन्म लिया उससे आरम्भ करके अजमेर के तारागढ़ के नीचे अश्रुपूर्ण नेत्रों से उस निदारण शमशान भूमि को देखकर आये हैं जहां उस भारत के सूर्य दिव्यदेह को चितानल ने कुछ मुट्ठी भर भस्म में परिणित कर दिया था। ....कोई-कोई संयासी कहते हैं कि हरिद्वार से आरम्भ करके गंगासागर तक पर्यटन करने में प्रायः तीन वर्ष लगते हैं परन्तु हमने दयानन्द गंगा के परिक्रम में पन्द्रह वर्ष काटे हैं।" यह था ऋषि के पावन चरित्र का जादू

जिस से प्रेरित होकर देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय अपनी जवानो अपना सर्वस्त्र उस पर लुटा देता है।

लेखनी का जादू—

ऋषि की वाणी ही नहीं लेखनी भी जादू भरी थी। कहीं-कहीं तो वह वाणी से भी अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज जो महर्षि के साथ वार्तालाप से भी पूर्ण-रूपेण आस्तिक नहीं बन पाये थे, वे उनकी लोह-लेखनी सत्यार्थ प्रकाश के स्वाध्याय से आस्तिक ही नहीं, आस्तिकता के प्रबल प्रचारक बन गये। इस तथ्य को उन्होंने स्वयं अपनी आत्मकथा में स्वीकारा है। यद्यपि महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के सम्पर्क में आने से उनकी नास्तिकता जाती रही थी, तथापि पुनर्जन्म में उनका विश्वास नहीं जम रहा था। इसी कारण उनका झुकाव ब्रह्म समाज की ओर अधिक हो चला था क्योंकि वह समाज पुनर्-जन्म में विश्वास नहीं रखता। पर जब किसी आर्य सज्जन ने उन्हें अपनी शंकाओं की निवृत्ति के लिये सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने का परा-मर्श दिया और उन्होंने जैसे-तैसे सत्यार्थ प्रकाश की एक प्रति प्राप्त की और उसका स्वाध्याय किया तो काया ही पलट गई। आठवें सम्मुल्लास में वर्णित पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने उन्हें सच्चा आस्तिक बना दिया। जो कार्य उनकी वाणी नहीं कर पाई वह उनकी लेखनी ने कर दिखाया।

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ऋषि की लेखनी के ज़ादू को स्वीकारते हुये लिखते हैं कि—"मैं अवश्य ही ईसाई हो गया होता यदि मैंने सत्यार्थ प्रकाश और स्वामी दयानन्द की जीवनी को अच्छी तरह न पढ़ा होता।" एक प्रसिद्ध वेदान्ती साधु थे जिनका

नाम स्वामी धर्मानन्द जी था। उनकी शिष्य मण्डली ने सत्यार्थ प्रकाश की एक प्रति वेदांत के खण्डन का उत्तर लिखने के लिए उन्हें दी। कुछ दिनों बाद जब शिष्यों ने उत्तर मांगा तो स्वामी जी ने निम्न पंक्ति उत्तर में लिख दी—

'सारी उम्र वीत गई साडी, सानूँ सज्जनाँ दी याद न आई।' जब शिष्यों ने इसका भाव पूछा तो बोले–"दयानन्द जी ने शाश्वत सत्य का प्रतिपादन किया है। संसार में ऐसा कौन है जो उसका खण्डन कर सके ?"

वीतराग आर्य सन्यासी श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज भी एक वेदान्ती साधु थे। एक बार वे बीमार पड़ गये। तब एक आर्य सज्जन ने उनकी मनोयोग पूर्वक सेवा की। जब स्वस्थ होकर श्री स्वामी जी जाने लगे तो उन आर्य सज्जन ने एक पुस्तक सुन्दर वस्त्र में लपेट कर उन्हें भेंट की और निवेदन किया कि महाराज यदि आप मेरी सेवा से प्रसन्न हैं तो कृपया मेरी यह भेंट स्वीकार करें और एक बार इसे आदि से अन्त तक अवश्यमेव पढ़ने की कृपा करें। श्री स्वामी जी ने सहज स्वभाव से वचन दे दिया कि पढ़ूँगा। मार्ग में विचार आया कि देखें तो सही यह पुस्तक है कौन सी ? जब खोला तो देखा कि महर्षि दयानन्द रचित सत्यार्थ प्रकाश थी। वेदान्ती होने के नाते वे सर्वत्र इस पुस्तक से घृणा किया करते थे। पर अब तो प्रतिज्ञा कर चुके थे अतः पढ़नी पड़ी। ज्यों-ज्यों पढ़ते गये ऋषि की लेखनी के जादू का असर होने लगा। पुस्तक समाप्त होने से पूर्व ही वेदान्त का सारा प्रभाव जाता रहा। उन्हें एक नयी ज्योति मिली, एक नया प्रकाश मिला जिसने उनकी विचारधारा को पलट कर रख दिया और वे आर्य सन्यासी बन गये। ऐसा था ऋषि की लेखनी का

जादू जो न जाने कितनों को सीधी सच्ची वेदोक्त राह दिखा गया, कितनों की जीवनधारा बदल गया और कितनों को मोहित कर गया।

महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका और वेद भाष्य ने विश्व के जनमानस पर जो विस्मयकारी प्रभाव डाला उसका एक लम्बा इतिहास है। महर्षि के वेदभाष्य से पूर्व जो लोग वेदों को भाण्ड, धूर्त्त और निशाचरों की कृति कहा करते थे, वही अब उनके भाष्य को पढ़कर उसको निर्भ्रान्ति ईश्वरीय ज्ञान कहने लगे। जर्मन के महाविद्वान् मैक्समूलर जिन्हें ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस बात के लिए उत्साहित किया था कि वे बाईब्लि की वेदों से श्रेष्ठता सिद्ध करें। और उन्होंने वेदों को अनर्गल प्रलापों की पुस्तक तथा गड़रियों के गीत और न जाने क्या-क्या कह डाला था पर महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका को देखकर उसकी विचारधारा ने पलटा खाया। यद्यपि वह ईसाई मत के व्यामोह को छोड़ नहीं सका तथापि दवी जुबान में वेदों की श्रेष्ठता उसे स्वीकार करनी ही पड़ी। उसको यह स्वीकारना पड़ा कि विश्व के इतिहास में वेद एक ऐसी खाई या कमी की पूर्ति करता है कि जिसकी पूर्ति अन्य किसी भाषा के साहित्यिक कार्य से नहीं हो सकती। अपनी पत्नि को लिखे अपने पत्र में उसने स्वीकारा था कि उसने वेदों का भाष्य इस लिये नहीं किया था कि वह वेदों का प्रचार करना चाहता है, अपितु इस भावना से प्रेरित होकर किया था कि वह भारतीयों के मन में वेदों के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न कर सके। पर हुआ यह कि जब उन्होंने महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य और ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका को पढ़ा तो उनकी अपनी विचारधारा बदल गई। चले तो थे भारत-वासियों की विचारधारा बदलने के लिये पर ऋषि के सम्पर्क में

आते ही अपनी विचारधारा बदल बैठे। और ऐसे प्रभावित हुये कि उनकी जीवनी लिखने तक की इच्छा व्यक्त करने लगे और लन्दन आर्यसमाज को पत्र लिख कर आर्यसमाज की सेवा करने की बात कहने लगे। काश! मैक्समूलर और जीवित रहते तो निश्चय ही महर्षि दयानन्द के जादू से प्रभावित होकर अपनी पूर्व लिखी पुस्तकों का भी संशोधन कर देते। पर दुर्भाग्य है कि वे ऐसा न कर सके। फिर भी ऋषि की विचारधारा पाश्चात्य विद्वानों को अत्यधिक प्रभावित कर गयी और उन्होंने वेद सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण में उचित परिवर्तन कर लिये और वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मान लिया। यह ऋषि का चमत्कार नहीं, जादू नहीं तो और क्या है ? जेम्स हेस्टिंग्ज तो अपने संदर्भ ग्रंथ में यहां तक लिखते हैं कि—"Dayanand tried to make the book of God resemble the book of Nature.' (Encyclopedia of Religion and Ethics.) अर्थात् महर्षि दयानन्द ने ईश्वरीय पुस्तक (वेद) को प्रकृति की पुस्तक(सृष्टि) के अनुकूल सिद्ध करने का प्रयत्न किया। वास्तव में यदि वेद और सृष्टि एक ही सत्ता के कार्य हैं तो दोनों में सामंजस्य होना स्वाभाविक एवं अनिवार्य है। योगी अरविन्द ऋषि की वेदभाष्य शैली पर मोहित हो उठते हैं और उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। वे तो यहां तक लिखते हैं कि महर्षि दयानन्द ने वेदों के बारे में अतिशयोक्ति से काम न लेकर नोक्ति से काम लिया है। अमेरिका के एण्ड्रूज़ जैकसन डेविस उन्हें एक आग की उपमा देते हैं कि जो संसार भर के अज्ञान, अविद्या और अंधकार के विनाश के लिए प्रादुर्भूत हुई थी। पाठक सोचें कि क्या विदेशी विद्वानों के मस्तिष्क में अभूतपूर्व परिवर्तन लाने में ऋषि की लेखनी का जादू नहीं काम कर रहा ?

ऋषि दयानन्द ने बुद्धिवाद की जो मशाल जलाई थी उसका

अभूतपूर्व परिणाम निकला। वे लोग जो कभी समुद्र यात्रा को पाप समझते थे आज अपने धर्म प्रचारकों को विदेशों में धर्मप्रचार हेतु भेजने में गौरव अनुभव करते हैं। वे लोग जो कभी मिथ्या आडम्बरों से चिपटे हुये थे, आज उनका खुल कर विरोध कर रहे हैं। वे लोग जो धर्म में तर्क करना पाप समझते थे आज प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर कसने को उत्सुक हैं। वे लोग जो अविश्वसनीय घटनाओं पर तनिक सी भी टीका-टिप्पणी से बिदकते थे आज उन्हें विश्वसनीय धरातल पर उतारने के लिए प्रयत्नशील हैं। आज प्रत्येक मतवादी अपनी धर्म पुस्तकों को व्यवस्थित करने में लगा है और उन्हें यथासम्भव बुद्धि-सम्मत एवं तर्क संगत बनाने का प्रयत्न कर रहा है। यह सब ऋषि का जादू नहीं तो फिर और क्या है? यह किस काजादू है कि जिसने विश्व भर के जन मानस को बदल कर रख दिया है। कोई आज उसकी एक बात मान रहा है तो कल दूसरी को। जग यह महसूस करे या न करे कि वह दयानन्द का अनुयायी होता चला जा रहा है पर यह सत्य है कि—

"ऋषिराज तेज तेरा चहुं ओर छा रहा है ।
तेरे बताये पथ पर संसार आ रहा है।"

सुप्रसिद्ध इतिहासकार के. पी. जायसवाल ठीक ही लिखते हैं कि "मैंने उनके शब्दों को अपना कार्य करते हुये स्वयं देखा है। वे लोग जो कभी उनका विरोध किया करते थे, आज उनके एक सिद्धांत को मान रहे हैं तो कल दूसरे को, बिना यह महसूस किये कि वे दयानन्द के अनुयायी होते चले जा रहे हैं।" कवि की वाणी तथा लेखक का कथन सार्थक हो रहा है। ऋषि का जादू अपना कार्य कर रहा है। लोग अनायास उसकी ओर खिचे चले आ रहे

हैं । रूढ़िवाद को तिलांजलि दी जा रही है, बुद्धिवाद अपने पाँव जमा रहा है । लोग मान्यतायें बदलने को बाध्य हो रहे हैं । व्याख्यायें बदली जा रही हैं, भाष्य बदले जा रहे हैं । वैचारिक क्रांति का सूत्रपात हो चुका है । यह सब ऋषि का जादू नहीं, चमत्कार नहीं तो और क्या है ?

महर्षि के प्रत्येक विचार से सहमत न होने वाले व्यक्तियों को भी यह मानना पड़ता है कि उन्होंने अपनी शास्त्रीय आलोचना और ओजस्विनी वाणी से आर्य जाति के सदियों से बन्द पड़े विचार सागर का ऐसे जोर से मंथन किया कि उसमें से अनायास विचारों की स्वाधीनता और कर्म करने की ओर प्रवृत्ति जैसे बहुमूल्य उपहारों का प्रादुर्भाव हो गया । यह माना हुआ सिद्धांत है कि मानसिक स्वाधीनता के बिना सामाजिक स्वाधीनता और सामाजिक स्वाधीनता के बिना राजनैतिक स्वाधीनता सम्भव नहीं । महर्षि ने जहाँ भारतवासियों को स्वदेश के प्रति भक्ति-भावना का अमृत पिलाया वहाँ साथ ही मानसिक स्वाधीनता की शृङ्खलाओं को काटकर राष्ट्र को स्वाधीनता के मार्ग पर डाल दिया ।

—प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति

आर्य समाज रेलवे हरथला कालोनी, मुरादाबाद का

३१वाँ वार्षिकोत्सव

दिनांक १, २ तथा ३ नवम्बर १९८१

आमन्त्रित विद्वान् :

शास्त्रार्थ महारथी पं० शान्ति प्रकाश जी

पूज्य स्वामी सुकर्मानन्द जी महाराज

धर्माधिकारी आचार्य रामानन्द जी शास्त्री, पटना

वेदवक्ता डा० रामप्रसाद जी वेदालंकार, अचार्य
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी, हरिद्वार

ओजस्वी गायक श्री वृजपाल शर्मा कर्मठ तथा श्री सत्यपाल जी

सुमधुर गायक श्री गोविन्द सिंह जी

आर्य भजनोपदेशक श्री धर्म राज सिंह जी

प्रतियोगिता :

२५ अक्तूबर १९८१

भाषण : विषय–धर्म निरपेक्षता धर्महीनता नहीं।

निबन्ध : विषय–वर्तमान परिस्थितियों में आर्य समाज का दायित्व

सुगम संगीत प्रतियोगिता

वेद प्रचार सप्ताह—

इस वर्ष दिनांक १५ अगस्त ८१ श्रावणी से २३ अगस्त ८१ श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तक आर्य समाज में वेदवक्ता श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी, (११/२ बलकेश्वर कालोनी, आगरा) की भव्य वेद कथा का आयोजन किया गया।
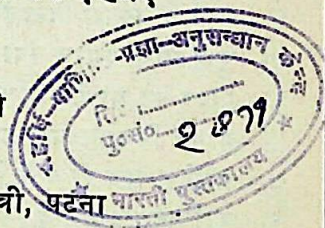
हमारे प्रकाशन

१—प्रभु है भी ?	साहित्याचार्य बलदेव जी अग्निहोत्री
२—कर्म फल प्रश्नोत्तरी	श्री यशपाल आर्यबन्धु
३—मृत्यु और उसका भय	,, ,,
४—सत्यार्थ प्रकाश दिग्दर्शन	,, ,,
५—मुझे आर्य समाज क्यों प्रिय है ?	,, ,,
६—विश्व को आर्य समाज की देन	,, ,,
७—मानव निर्माण और आर्य समाज	,, ,,
८—आर्य समाज ही क्यों ?	,, ,,
९—क्रान्तिदूत दयानन्द	,, ,,
१०—ऋषि का जादू	,, ,,
११—सुमन संचय	,, ,,
१२—प्रार्थना विज्ञान	,, ,,
१३—सदाचार सुधा	श्री महावीर सिंह 'मुमुक्षु'

मूल्य : केवल सहयोग

हमारे आगामी प्रकाशन

१—आर्य समाज क्या चाहता है ?
२—आर्य समाज स्थापना का उद्देश्य
३—भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और आर्य सजाज
४—धर्म और विज्ञान

प्राप्ति स्थान :

आर्य समाज रेलवे हरथला कालोनी, मुरादाबाद
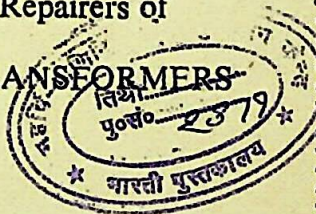
हमारे प्रकाशन

१—प्रभु है भी ?	साहित्याचार्य बलदेव जी अग्निहोत्री
२—कर्म फल प्रश्नोत्तरी	[illegible]
३—मृत्यु और उसका भय	,, ,,
४—सत्यार्थ प्रकाशक दिग्दर्शन	,,
५—मुझे आर्य समाज क्यों प्रिय है ?	,, ,,
६—विश्व को आर्य समाज की देन	,, ,,
७—मानव निर्माण और आर्य समाज	,, ,,
८—आर्य समाज ही क्यों ?	,, ,,
९—क्रान्तिदूत दयानन्द	,, ,,
१०—ऋषि का जादू	,, ,,
११—सुमन संचय	,, ,,
१२—प्रार्थना विज्ञान	
१३—सदाचार सुधा	श्री महावीर सिंह 'मुमुक्षु'

मूल्य : केवल सहयोग

हमारे आगामी प्रकाशन

१—आर्य समाज क्या चाहता है ?
२—आर्य समाज स्थापना का उद्देश्य
३—भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और और आर्य समाज
४—धर्म और विज्ञान

प्राप्ति स्थान :

आर्य समाज रेलवे हरथला कालोनी, मुरादाबाद